''जैन साहित्य में राजा और उनकी राजनीति''

प्रो0 (डॉ0) विश्वनाथ चौधरी*

भारतीय वाङ्गमय में जैन साहित्य का विशेष योगदान है। जैन साहित्य से भारतीय वाङ्गमय काफी सुदृढ हुआ है। इसलिए सम्पूर्ण भारतीय वाङ्गमय में जैन साहित्य का महत्त्वपूर्ण स्थान है।

जैन साहित्य में साहित्कारों ने अपनी कृतियों में न्याय, ज्योतिष, गणित, भौतिक आदि विविध विज्ञान, प्राणीशास्त्र, भूगोल, सम्पति आदि विषयों का सरस, सुबोध और विस्तृत विवेचन किया है। साथ ही उन्होंने राजनीति का भी कोई ऐसा अंग नहीं है जिसे गहराई से स्पर्श न किया हो, ऐसा प्रतीत होता है कि जैसे राजनीति के प्रासाद का एक–एक कोना जैन रचनाकार झाँककर आये हों। इस प्रकार जैन कवियों, साहित्यकारों ने भारत की तत्कालीन राजा और राजनीति का सुव्यवस्थित सचित्र मर्मस्पर्शी चित्रण किया है।

राजा की नीति को राजनीति कहा जाता है। अतः राजा कैसा हो, इसी प्रश्न पर सर्वप्रथम विचार करें। इसका बहुत सुन्दर समाधान हमें आचार्य समन्तभद्र के 'स्वयंभू स्तोत्र' में मिलता है। भगवान् शान्तिनाथ की स्तुति करते हुए आचार्य लिखते है कि हे शान्ति–जिन, आपने शत्रुओं से अपने प्रजा–जनों की रक्षा की है, अतः आप अप्रतिमप्रताप विभूषित राजा हुए हैं।[1] उक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि राज्य पद को वही राजा सुशोभित करने का अधिकारी है जो अपनी प्रजा की रक्षा करता है। अपने ऊपर सम्पूर्ण राष्ट्र के जीवन–निर्वाह का भार लेकर उससे पराङ्गमुख हो जाये, वह राजा थोड़े ही है, वह तो आत्म–प्रवंचक है। राजा का पद भोगविलास का पद नहीं है, वह तो उत्कृष्ट त्याग का पद है और जो राजा अपनी प्रजा के हित में अपने स्वार्थो की तिलाञ्जलि दे दे, वही उत्कृष्ट प्रशंसा और सम्मान का पात्र है। राजा और राज्य के त्यागमय होने के कारण ही आचार्य सोमदेव ने राजा को नमस्कार किया है[2]– **''धर्मार्थकामफलाय राज्याय नमः ''।** आचार्य सोमदेव के मत में वही व्यक्ति राज्यपद का अधिकारी हो सकता है जो 'धर्मात्मा, कुल अभिजन और आचार से शुद्ध, नैतिक, न्यायी, निग्रह–अनुग्रह में तटस्थ, आत्म–सम्मान, आत्म–गौरव से व्याप्त और कोशबल से सम्पन्न है।[3]

***अध्यक्ष, स्नातकोत्तर प्राकृत एवं जैनशास्त्र विभाग, वीर कुँवर सिंह विश्वविद्यालय, आरा**

अपने महाकाव्य 'चन्द्रप्रभ–चरित' में वीरनन्दी स्वामी ने भी राजा के विषय में इसी प्रकार का विवरण प्रस्तुत किया है। 'तुम कलिकाल के दोषों से मुक्त रहकर, अर्थ और काम पुरूषार्थ की ऐसी वृद्धि करना जो धर्म की विरोधी न हो क्योंकि समानरूप से त्रिवर्ग सेवन करने वाला राजा ही दोनों लोको की सिद्धि करता है। जो राजकर्मचारी प्रजा को कष्ट पहुँचाते है उनका तुम निग्रह करना और जो प्रजा की सेवा करते हैं उनको वृद्धि देना, क्योंकि ऐसा करने से वन्दीजन तेरी कीर्ति गायेंगे (अर्थात् तुम यशस्वी बनोगे) और वह क्रमशः दिग्दिगन्त तक फैल जायगी।[4]

राजा सम्बन्धी प्रश्न के उपरान्त अब हम उनकी नीति के सिद्धान्तों पर आते हैं। राजनीति के ये सिद्धान्त उतने ही प्राचीन हैं जितनी की कर्मभूमि। भरत कर्मभूमि के प्रथम संम्राट थे और उन्होंने ही इन सिद्धान्तों को निश्चिय किया था तथा स्वयं इनका परिपालन भी किया। किन्तु ये सिद्धान्त आज भी उतने ही अनिवार्य है। हाँ, इतना अवश्य है कि समय और परिस्थिति के अनुसार इनके साधन और प्रयोग में अन्तर आ सकता है और आया भी है। ये सिद्धान्त इस प्रकार हैं–सन्धि, विग्रह, यान, आसन, संश्रय और द्वेधीभाव। ये राजाओं के छः गुण हैं। उत्साह, मन्त्र और प्रभाव ये तीनों शक्तियां है। साम, दाम, भेद और दण्ड ये चार उपाय हैं। सहाय, साधनोप्राय, देशविभाग, कालविभाग और विपत्ति प्रतीकार, ये पाँच अंग हैं।

राजनीति के इन सिद्धान्तों का सफल प्रयोग वही राजा कर पाता है जो समस्त राजविद्याओं में निष्णात हो। किन्तु राजविद्याओं की संख्या के विषय में सभी राजनीतिक विद्वान् एक मत नहीं हैं। प्राचीनकाल से ही इस पर मतभेद चला आ रहा है। शुक्राचार्य के शिष्य मात्र दण्डनीति को ही राजविद्या मानते हैं, क्योंकि दण्ड एक ऐसा अस्त्र है जिसके भय से सभी लोग अपने–अपने कार्य में अवस्थित रहते है। वृहस्पति के अनुयायी वार्ता ओर दण्डनीति, इन दो को राजविद्या कहते हैं। मनुस्मृति के भक्तों के मत में त्रयी–वार्ता और दण्डनीति ये राजविद्यायें है। कौटिल्य आन्वीक्षिकी, त्रयी वार्ता और दण्डनीति, इन चार को राजविद्यायें मानते हैं। आचार्य सोमदेव ने भी इन्ही चार को राजविद्या माना है। अध्यात्म विषय का निरूपण करने वाली आन्वीक्षिकी, पठन–पाठन, पूजन एवं विधान का वर्णन करने वाली त्रयी, कृषि तथा पशुपालन आदि व्यवसायों का वर्णन करने वाली वार्ता और साधु–संरक्षण तथा दुष्टों का निग्रह जिसमें वर्णित है, वह दण्डनीति कहलाती है।[5]

राजनीतिक चिन्तन के क्षेत्र में आचार्य सोमदेव का योगदान विशेष उल्लेखनीय है। यदि शुक्राचार्य, वृहस्पति, मनुस्मृति के प्रणेता मनु तथा कौटिल्य को याद किया जायेगा, तो आ0 सोमदेव को भी विस्मरण करना संभव नहीं है। उनका 'नीतिवाक्यामृत' एक ऐसा अनमोल ग्रन्थरत्न है जिसमें राजनीति के सम्पूर्ण

अंगों का सरस तथा सुबोध विवेचन किया गया है। तात्कालिक तथा बाद के सभी राजनीतिक विद्वान् दस ग्रन्थ से अत्यन्त प्रभावित हुए है तथा इसे वे एक आदर्श मानते है। किन्तु उनका दूसरा ग्रन्थ 'यशस्तिलक चम्पू' भी कम मूल्यवान् नहीं है। इसका तृतीय आश्वास आचार्यश्री के गहन राजनीतिक चिन्तन को अपने उदर में समेटे हुए है। वस्तुतः इस ग्रन्थ का प्रणयन कर आ0 महाराज ने संस्कृत साहित्य का एक महान् उपकार किया है। यह ग्रन्थ चैत्र शु0 13, शक् संवत् 881 (विक्रम संवत् 1016) की सामन्त वद्दिग, जो चालुक्यवंशीय अरिकेसरी के प्रथम पुत्र थे– की राजधानी गंगाधारा में पूर्ण हुआ। आइये, हम इन बहुश्रुत विद्वान् की राजनीतिक विचारधारा से थोड़ा परिचय करें।

आचार्य कहते है कि विजयशाली राजाओं में वही राजा विजयश्री प्राप्त करता है जो नय (राजनीतिक ज्ञान व सदाचार सम्पति) के साथ रहने वाली पराक्रम शक्ति (सैन्य व खजाने की शक्ति) से विभूषित है। जिस प्रकार जड़–सहित वृक्ष शाखा पुष्प व फलादि से वृद्धिंगत होता है उसी प्रकार राज्यरूपी वृक्ष भी राजनीतिक ज्ञान, सदाचार तथा पराक्रम शक्ति से समृद्धिशाली होता है।[6] सैन्यबल के विषय में राजाओं को यह नीति अपनानी चाहिए कि बिना विचारे सैनिको की संख्या न बढ़ायी जाय, क्योंकि प्रायः ऐसी सेना उपयुक्त अवसर पर अनुपयुक्त सिद्ध होती है। आचार्य का कहना हे कि ''पुष्ट, शूरवीर, अस्त्रकला के जानकार और स्वामीभक्त श्रेष्ठ क्षत्रियों की थोड़ी–सी सेना भी कल्याणकारिणी होती है, व्यर्थ झुण्ड को एकत्रित करने से क्या लाभ है? इसी प्रकार कोषवृद्धि के लिए विजय के इच्छुक राजाओं को सभी वैद्य उपायों से अपनी आय बढ़ाना चाहिए और यह भी देखना चाहिए कि उनका व्यय आय से कम है। राजा के आय और व्यय की व्यवस्था में मुनियों के कमण्डलु[7] का दृष्टान्त समझना चाहिए अर्थात् जिस प्रकार कमण्डलु में जल–ग्रहण का द्वार तो बड़ा होता है और निष्कासन का द्वार छोटा, उसी प्रकार राजा की आय तो अधिक होनी चाहिए और व्यय कम। इसी प्रसंग में यहाँ तक कहा गया है कि जो आय का विचार न करके व्यय करता है वह कुबेर के समान प्रचुर धन का स्वामी होकर भी नंगा हो जाता है, राजा का दरिद्र हो जाना तो स्वाभाविक है।[8]

जब कोई राजा विजिगीषा की भावना से अपने राष्ट्र की रक्षा की चिन्ता न कर अन्य देश पर आक्रमण करता है, तो वह एक खतरनाक स्थिति है। ऐसे राजा को आचार्य बड़ी सुंदरता से सावधान करते हैं– ''जो राजा अपने राष्ट्र की रक्षा न करके दूसरे के देश को ग्रहण करने की इच्छा करता है, वह उसी प्रकार हँसी व निन्दा का पात्र होता है।[9] जिस प्रकार अन्तरीय वस्त्र (धोती) उतारकर उसके द्वारा अपना मस्तक वेष्टित करने वाला (साफा बाँधने वाला) मानव हँसी व निन्दा का पात्र

होता है। विजिगीषु राजा को साम–दाम आदि विजय के सभी उपायों का ज्ञान होना आवश्यक है। अन्यथा उसकी भुजाओं की शक्ति निरर्थक हैं। वह अपने शत्रु पर उसी प्रकार विजयश्री प्राप्त नहीं कर सकता, जिस प्रकार कि धनुष पर न चढ़ा हुआ बाण अपने लक्ष्य को भेदने में अशक्य है।[10] किन्तु दण्डनीति का प्रयोग तो उसी समय किया जाना चाहिए जब साम आदि उपाय असफल हो जाएँ। दण्डनीति का प्रयोग किस समय किया जाय, इसका भी प्रावधान आचार्य ने किया है। राजाओं के सन्धि व विग्रह के सूचक तीन काल होते हैं–उदय, समता तथा हानि। विजिगीषु को उक्त तीनों कालों में से पहिले उदयकार में शत्रुराजा से युद्ध करना चाहिए। यतः प्रचुर सैन्यशक्तिशाली शत्रुभूत राजा के साथ युद्ध करने से हीन शक्ति वाले विजिगीषु राजा की उस प्रकार हानि होती है जिस प्रकार हाथी के साथ युद्ध करने से पैदल सैनिक की हानि होती है। अतः वन के हाथी की तरह भेद उपाय द्वारा शत्रु को दल से तोड़कर वश में करना चाहिए। विजयश्री चाहने वाले राजा को काँटे से कांटा निकालने की तरह शत्रु की शत्रुद्वारा नष्ट करने में प्रयत्नशील होना चाहिए। इसी प्रकार हीनशक्ति के धारक राजा के साथ भी स्वयं नहीं लड़ना चाहिए बल्कि उसे अन्य बलवानों के साथ लड़ाकर क्षीण कर देना चाहिए अथवा किसी नीति द्वारा उसे अपना दास बना लेना चाहिए।[11] इस प्रकार युद्ध की व्यवस्था कर देने पर भी ग्रन्थकार युद्ध का पक्षपाती नहीं है। वह कहने लगता है कि ''शरीर एक है और हाथ दो ही है, शत्रु पद–पद पर भरे पड़े हैं। काँटे जैसा क्षुद्र शत्रु भी दुख पहुँचाता है। फिर तलवार द्वारा कितने शत्रुओं को जीता जा सकता है ? जो कार्य साम, दाम और भेद के द्वारा सिद्ध न हो सके, उसी के लिए दण्ड का प्रयोग करना चाहिए। साम के द्वारा सिद्ध होने योग्य कार्य में शस्त्र का कौन प्रयोग करेगा ? जहाँ गुड़ खिलाने से मृत्यु हो सकती है वहाँ विष कौन देगा? नय रूपी जाल डालकर शत्रुरूपी मत्स्यों को फँसाना चाहिए। जो भुजाओं द्वारा युद्धरूपी क्षुभित समुद्र को तरना चाहेगा, उसके घर कुशलता कैसे हो सकती है ? फूलों के द्वारा भी युद्ध नहीं करना चाहिए, फिर तीक्ष्ण बाणों द्वारा युद्ध करने की तो बात ही क्या है! हम नहीं जानते युद्ध दशा को प्राप्त हुए पुरूषों की क्या दशा होती होगी!''

आ0 सोमदेव ने जहाँ दण्डनीति पर इतना विस्तृत प्रकाश डाला है, वहाँ साम, दाम और भेदनीति को भी नहीं भुलाया है। आचार्य ने गुणसंकीर्तन, सम्बन्धोपाख्यान, अन्योपकारदर्शन, आयतिप्रदर्शन और आत्मोपसंधान, इन पाँच भागों में सामनीति को विभाजित किया है।[12] दाननीति वह है जहाँ पर विजय का इच्छुक राजा शत्रु से अपनी प्रचुर सम्पति के संरक्षण के लिए उसे थोड़ा साधन देकर प्रसन्न कर लेता है।[13] भेदनीति वह है जहाँ विजिगीषु अपने सेनानायक, तीक्ष्ण व अन्य गुप्तचरों तथा दोनों तरफ से वेतन पाने वाले गुप्तचरों द्वारा शत्रु सेना में परस्पर एक दूसरे के प्रति सन्देह

व तिरस्कार उत्पन्न कराकर भेद (फूट) डालता है।[14] ''जो राजा शत्रु–समूह में भेद (फोडना) न करके युद्ध करने के लिए उत्साहित रहता है, वह ऊँचे वक्ष के स्कन्ध प्रदेशों पर लगे हुए बांस वृक्ष के खींचने वाले सरीखा आचरण करता है''।[15] राजा को उदार भी होना चाहिए। उसे अपनी सम्पत्ति से कुछ भाग अपने कुटुम्बीजनों आदि में भी वितरण कर देना चाहिए। इस तरह न तो अंतरंग सेवकवर्ग ही भ्रष्ट होगा और न प्रजा में ही असन्तोष की ज्वाला फैलेगी। जो राजा ऐसा नहीं करता है उसका धन उसके जीवन के साथ इस प्रकार क्षय को प्राप्त होता है जिस प्रकार का छत्ता शहद की मक्खियों के क्षय के साथ नष्ट हो जाता है।[16] राज्य में स्थिर शान्ति का यह एक अमोघ उपाय है।

आचार्य सोमदेव राजा के शारीरिक व बौद्धिक बल, दोनों को ही महत्त्वशाली मानते हैं। उनका कथन है, ''शक्ति–हीन राजा का बौद्धिक–बल किस काम का ? और बुद्धिहीन राजा की शक्ति किस काम की? क्योंकि दावानल के ज्ञाता पंगुपुरूष के समान ही सबल अन्धा पुरूष भी दावानल का ज्ञान न होने से अपनी रक्षा नहीं कर पाता।''[17] अपने शत्रुओं को वश में करने के लिए राजा को यह आवश्यक नहीं है कि वह उनके देशों पर आक्रमण करे। उसे तो एक कृषक, कुम्भकार तथा माली की तरह होना चाहिए। कृषक खेत के बीच मंच पर बैठकर गोला गोफण द्वारा पक्षियों को पाषाण आदि फेंककर भगाता है। ऐसे ही अपने आसन पर आरूढ़ होकर राजा को समस्त पृथ्वी का पालन करना चाहिए। कुम्भकार घर में बैठकर चक्र चलाता हुआ विभिन्न प्रकार के पात्रों को प्राप्त कर लेता है, उसी प्रकार राजा को भी अपने ही स्थान पर बैठकर चक्र (नीति तथा सैन्य) चलाकर चारों दिशाओं में स्थित राजाओं के नगररूपी पात्रों को प्राप्त करना चाहिए। माली कटीले वृक्षों को काटकर उद्यान के चारों ओर बाढ़ के रूप में लगाता है, उसी प्रकार तीक्ष्ण प्रकृति वाले राजाओं को राज्य की सीमा पर बाढ़ लगाकर राजा को राज्य की रक्षा करना चाहिए। माली परस्पर में मिले हुए आम, अनार आदि वृक्षों को पुनः आरोपित करता है, फूले हुए वृक्षों से पुष्पराशि चुनता है, छोटे वृक्षों व पौधों को बढ़ाता है, ऊँचे वृक्षों को भली प्रकार नीचे झुकाता है, विशालवृक्षों को कृश (कलम) करता है तथा ऊँचे वृक्षों को गिराता है, उसी प्रकार राजा को परस्पर मिले हुए शत्रुभूत राजाओं को भेदनीति द्वारा पृथक् कर देना चाहिए, धनाढ्य प्रजाजनों से कर के रूप में छठा अंश ग्रहण करके पृथ्वी का पालन करना चाहिए,[18] घमण्डी शत्रुभूत राजाओं को वश में करना चाहिए, बड़ों को हल्का कर देना चाहिए, उनकी सेना को कम कर देना चाहिए और प्रचुर फौजवाले शत्रुभूत राजाओं को युद्धभूमि में धराशायी कर समस्त पृथ्वी का पालन करना चाहिए। उसे हीन–शक्ति वाले शत्रु की भी उपेक्षा नहीं करना चाहिए, क्योंकि जिस प्रकार पीपल वृक्ष के छोटे से बीज से भी उत्तर काल

में एक बड़ा वृक्ष तैयार होकर अन्य वृक्षों को समूल नष्ट कर देता है, उसी प्रकार हीन–शक्ति वाले शत्रु की संतान भी भविष्य में उसे भय उत्पन्न कर सकती है।[19]

राज्य के सन्धि–विग्रहाद्रि कार्य राजदूत के द्वारा ही सम्पादित किए जाते हैं। अतः राजदूत भी राजा के लिए उतना ही महत्त्वपूर्ण है जितना कि देश के अन्दर मंत्री होता है। आचार्य सोमदेव के अनुसार राजदूत वही हो सकता है जो ''स्वामीभक्त, व्यसनों में अनासक्त, चतुर, पवित्र, विद्वान्, उदार, बुद्धिमान्, सहिष्णु, शत्रुरहस्य का ज्ञाता और कुलीन हो। इसी प्रकार गुप्तचर–संस्था भी राज्य का प्राण है। जिस राज्य में गुप्तचर नहीं होते, वह राज्य टिक नहीं पाता। राजा अपनी राजधानी में बैठकर गुप्तचरी के माध्यम से ही स्व–परराष्ट्र की हलचलों से परिचित हो पाता है। इसीलिए नीतिकारों ने गुप्तचरों को राजाओं का लोचन बताया है।[20] राजाओं को सावधान भी किया गया है कि वे गुप्तचरों की उपेक्षा न करें, अन्यथा उनका पद–पद पर ऐसा ही पतन होगा, जैसा चक्षुओं के अभाव में अंधे का होता है। आ0 सोमदेव के मत से गुप्तचर वही हो सकता है जो चतुर हो, शूरवीर हो, सहिष्णु हो, द्विज हो, प्रिय हो ओर निर्दोष आचार वाला हो।[21] नीतिवाक्यामृत में भी यही बात कही गयी है। गुप्तचर 34 प्रकार के हैं और राजदूत तीन प्रकार के।[22]

जिस प्रकार सन्धि, विग्रह आदि दूरदेशवर्ती राजकीय कार्यों में राजदूत की भूमिका अत्यन्त महत्त्वपूर्ण होती है, उसी प्रकार देश के अन्तवर्ती कार्यों में मंत्री की भूमिका एक अनिवार्य आवश्यकता है। ''अतः राजा को अनेक मंत्री रखना चाहिए और सावधानी से उनका भरण–पोषण करना चाहिए। राजा को मन्त्र कौन ? इनका बहुत सुन्दर उत्तर आचार्य ने दिया हैं जिसमें देश, काल, व्यय का उपाय, सहायक और फल का निश्चय किया जाता है, वही मन्त्र हैं। शेष सब मुँह की खाज मिटाना है। जिसका मन्त्र कार्यान्वित हो और फल स्वामी के अनुकूल हो, वही मन्त्री है। अन्य सब गाल बजाने वाले है।'' मन्त्र को अविलम्ब कार्यान्वित करने पर भी आचार्य ने जोर दिया है अन्यथा वह कृपणों के दान देने के विचार की भाँति निरर्थक हो जाता है। मन्त्री कहाँ का हो, इस प्रश्न पर भी आचार्य के विचार अत्यन्त उदार हैं। 'मन्त्री स्वदेश का भी निवासी हो सकता है और परदेश का निवासी भी। राजाओं का प्रयोजन तो प्रारम्भ किए गए कार्यों का सफलतापूर्वक निर्वाह होना है। शरीर में उत्पन्न व्याधि दुःख देती है और बन में उगी औषधि सुख पहुँचाती है। पुरूषों के गुण ही कार्यकारी हैं, निज और पर की चर्चा केवल भोजन में ही शोभा देती है। राजाओं को मन्त्र द्वारा ही सफलता प्राप्त करने की चेष्टा करनी चाहिए। 'मन्त्र–युद्ध से जिसे विजयीश्री प्राप्त हो जाय, उसे शस्त्र–युद्ध से क्या प्रयोजन ? मन्दार वृक्ष पर जिसे मधु प्राप्त हो जाय, वह बुद्धिमान् पुरूष पर्वत पर क्यों आरोहण करेगा ?

जहाँ एक ओर मन्त्रियों की उपयोगिता का इतना सुन्दर प्रतिपादन आचार्यश्री ने किया है, वहीं दूसरी ओर उनके प्रति राजाओं को जागरूक रहने के लिए भी कहा गया है। जो राजा राज्य के सभी कार्य मन्त्रियों को समर्पित कर स्वेच्छानुसार प्रवृत्त करते है, उनकी तुलना आचार्य ने उस मूर्ख व्यक्ति से की है जो बिल्लियों पर दूध की रक्षा का भार सौंप कर आनन्द से सोता है। 'मछलियों का जल में और पक्षियों को आकाश में कदाचित् गमन का मार्ग जाना जा सकता है, किन्तु हाथ से आँवले को लुप्त करने वाले इन मन्त्रियों की प्रवृत्ति को जानना असम्भव है। जिस प्रकार वैद्य धनाढयों के रोग को बढ़ाने में प्रयत्नशील रहते हैं, उसी प्रकार मन्त्री लोग भी राजाओं को व्यसनों में फंसाने के लिए सचेष्ट रहते हैं।'

आचार्य सोमदेव ने मंत्र की गोपनीयता[23] पर विशेष बल दिया है। यह एक ऐसा साधन है जिसके गर्भ में देश की उन्नति भी छिपी है और कुशलक्षेम भी। विष और शस्त्र द्वारा तो एक ही प्राणी मारा जाता है। परन्तु मन्त्र का एक विस्फोट ही सबन्धु राष्ट्र और राजा सभी को नष्ट कर देता है। अतः नीतिज्ञ राजा तो वही है जो अपने मन्त्र को प्रगट नहीं होने देता तथा अपने गुप्तचरों द्वारा अन्य राजाओं का मन्त्र जानता रहता है। मन्त्र–गोपन के लिए आचार्य का परामर्श है कि मन्त्रशाला का पूर्ण शोधन होना चाहिए। उसमें किसी भी अनुपयुक्त पुरूष का प्रवेश इसी प्रकार वर्जित होना चाहिए जिस प्रकार कि रतिक्रीड़ा के समय किसी अन्य पुरूष का सद्भाव अवाञ्छनीय है।[24] कितने ही राजा देव को न मानकर पुरूषार्थवादी बन जाते है, उनके लिए आचार्य का कहना है कि 'राजा को चाहिए कि वह क्रमशः दैव, ग्रहों की अनुकूलता, वैभव आदि और धार्मिक मर्यादा का विचार करके ही युद्ध आदि में प्रवृत्त हो। जो मानव पुण्य–प्रसाद से लक्ष्मी प्राप्त करके भी पुनः पुण्यकर्म के संचय करने में शिथिल होता है, उससे अधिक दूसरा कौन पुरूष कृतघ्न है ? धर्म नष्ट करके, प्राप्त किया हुआ राजा का धन कुटुम्बी आदि द्वारा भोगा जाता है और राजा उस प्रकार पाप का भाजन होता है, जिस प्रकार हाथी का शिकार करने से सिंह स्वयं पाप का भाजन होता है, क्योंकि उसका मांस गीदड़ आदि जंगली जानवर खाते है।' इसी प्रकार जो राजा देव के भक्त बनकर पुरूषार्थहीन हो जाते है, उन्हें भी आचार्य सावधान करते है कि 'जो पौरूष को छोड़कर भाग्य के आश्रित रहते हैं उनके मस्तक पर उस प्रकार कौए बैठते हैं कि जिस प्रकार महल के कृत्रिम सिंह पर कौए बैठते हैं। उष्णता–शून्य राख पर कौन पुरूष निर्भयतापूर्वक पैर नहीं रखता ?'[25]

आचार्य जिनसेन ने अपने ग्रन्थ महापुराण के 42वें सर्ग में राजा के धर्म की विस्तृत देशना प्रस्तुत की है। सम्राट् भरत एकत्रित राजाओं को क्षात्रधर्म का उपदेश देते हुए कहते है कि 'क्षत्रियों का धर्म कुल का पालन करना, बुद्धि का पालन

करना, अपनी रक्षा करना, प्रजा की रक्षा करना और समंजसपना इस प्रकार पाँच प्रकार का है। जिसने आत्मा की रक्षा की है ऐसे राजा को प्रजा के पालन करने में प्रयत्नशील होना चाहिए, क्योंकि यह राजाओं का मौलिक गुण है। उसे अपनी प्रजा का पालन एक ग्वाले की तरह करना चाहिए। ग्वाला अप्रमत्त रहकर अपने गोधन की रक्षा करता है। उस गाय समुह में मुख्य पशुओं के समूह की रक्षा करता हुआ सम्पत्तिशाली बनता है। उन पशुओं पर आने वाली सभी आपत्तियों का प्रतीकार शीघ्रातिशीघ्र करता है। यदि किसी गाय की हड्डी उसके उपयुक्त स्थान से च्युत हो जाय तो वह ग्वाला उसे ठीक स्थान पर बिठाता है। कदाचित् गायों के समूह को कोई कीड़ा काट लेता है, तो वह औषधि द्वारा उसका प्रतीकार करता है। अपने पशुओं के झुण्ड में किसी बुढ़े बैल की अधिक भार धारण करने में समर्थ जान उसकी सेवा करता है, और बियावान वन में उन्हें चराता हुआ उनका बड़े प्रयत्न से पोषण करता है। रात्रि के प्रहर मात्र शेष रहने पर उठकर जहाँ बहुत–सा घास और पानी होता है, ऐसे किसी योग्य स्थान में गायों को बड़े प्रयत्न से चराता है तथा बड़े सवेरे ही वापिस लाकर बछड़े के पीने से शेष बचे दूध को मक्खन आदि प्राप्ती की इच्छा से दुह लेता है। व्याघ्र, चोर आदि उपद्रव उपस्थित होने पर, निरास होकर वह ग्वाला अपने गोधन की रक्षा करता है। यदि उसके गोधन को देखने की इच्छा से राजा आ जाय, तो वह ग्वाला भेंट लेकर उसके पास जाता है और धन–सम्पदा द्वारा उसे सन्तुष्ट करता है। इसी प्रकार राजा को भी आलस्य रहित होकर प्रजा की रक्षा करनी चाहिए। प्रत्युत उनके अनुकूल दण्ड देकर उन्हें नियन्त्रित करना चाहिए। प्रजा में मुख्य वर्ग की प्रधान रूप से रक्षा कर उसे अपने तथा दूसरे के राज्य में पुष्टि प्राप्त करना चाहिए अर्थात् ऐसा राजा समुद्रान्त पृथ्वी को बिना किसी यत्न के ही जीत लेता है। युद्ध में घायल योद्धाओं को उत्त्म औषधि दिलवाकर उनकी विपत्तियों का प्रतीकार करना चाहिए तथा उनके ठीक होने पर उन्हें उत्तम आजीविका में नियुक्त कर देना चाहिए। यदि युद्ध में कोई सैनिक मरण को प्राप्त हो जाय, तो उसके पुत्र अथवा भाई आदि को उसके स्थान पर नियुक्त कर देना चाहिए। अपने सेवक को खेदखिन्न जान, उसके चित्त को संतुष्ट कर देना चाहिए और उसे उचित सम्मान देना चाहिए। सेना में जो उत्तम योद्धा हों, उन्हें उत्तम आजीविका देकर सम्मानित कर देना चाहिए। राजा को अपनी प्रजा की रक्षा करने के लिए चोर डाकू तथा इसी प्रकार के अवान्छित तत्त्वों को भी नष्ट कर देना चाहिए। निरालस होकर, अपने अधीन ग्रामों में बीज आदि देकर किसानों से अच्छी खेती कराना चाहिए तथा उनसे उचित अंश कर के रूप में ले लेना चाहिए जिससे कि उसका कोष धनधान्य से सम्पन्न हो जाय। प्रजा के अन्य अधार्मिक वर्गों को उचित साधनों द्वारा अपने वश में करना चाहिए। यदि कोई

बलवान् राजा अपने सम्मुख आ जाय, तो वृद्ध लोगों के साथ परामर्श कर उस राजा को कुछ देकर उससे सन्धि कर लेना चाहिए और इस प्रकार संहारक युद्ध को टालना चाहिए। इस प्रकार जो राजा अपनी प्रजा की रक्षा करता है, वह कभी भी अपनी प्रजा की ओर से दुःखी नहीं होता। उसकी प्रजा तथा सेवक, सभी उससे अनुराग करते हैं तथा उसके प्रति निष्ठावान् तथा स्वामीभक्त बने रहते हैं।[26]

शिष्ट पुरूषों का रक्षण तथा दुष्टों का निग्रह, यह राजा का समंजसत्व गुण है। यह गुण भी प्रत्येक राजा में होना अनिवार्य हैं जो राजा निग्रह करने योग्य शत्रु अथवा पुत्र दोनों का निग्रह करता है, जिसे किसी का पक्षपात नहीं है, जो दुष्ट और मित्र, सभी को निरपराध बनाने की इच्छा करता है, और इस प्रकार मध्यस्थ रहकर जो सब पर समान दृष्टि रखता हो, वह समंजस कहलाता है।

ये हैं कुछ मार्मिक उपदेश। राजा को दिशाबोध देने के लिए ये जैनाचार्यों के उपदेश हैं। यदि प्रत्येक शासक इन उपदेशों के अनुरूप आचरण करे, और उपरोक्त सुझावों को कार्यान्वित करे, तो वह निःसन्देह अपनी प्रजा का महान् कल्याण कर सकता है और अपने राज्य को उन्नति के शिखर पर आरूढ करता हुआ इस जगत को अलकापूरी में परिवर्तित कर सकता है। वैसे राजा भी हमारी आपकी तरह एक साधारण व्यक्ति होता है, उसके भी दो हाथ, दो पैर, दो आँखे और दो कान होते है, वह भी हमारे और आपके समान सोना, जागना, खाना, पीना आदि नित्यकर्म करता है। किन्तु यदि उसका हृदय जन–कल्याण की भावना से ओतप्रोत है तो वह अपनी अलौकिक प्रतिभा के प्रयोग द्वारा विद्वान् पुरूषों के बताये गये मार्ग पर चलकर, ऐसी विलक्षण सफलता को प्राप्त कर सकेगा जिसे चिरकाल तक इस पृथ्वी के लोग भूला न पायेंगे।

अन्यायोपार्जितं वित्तं दश वर्षाणि तिष्ठति।
प्राप्ते त्वेकादशे वर्षे समूलं च विनश्यति।।

अन्याय से अर्जित धन दस वर्ष तक ठहरता है और ग्यारहवें वर्ष के लगते ही मूल से नाश को प्राप्त हो जाता है।

सन्दर्भ ग्रन्थों की सूची :

01 ''विधाय रक्षा परतः प्रजानां, राजा चिरं योऽप्रतिमप्रतापः।''

02 नीतिवाक्यामृत–सूत्र 1

03 'धार्मिकः कुलाभिजनाचारविशुद्धः प्रतापराग्नयानुगतवृत्तिश्च स्वामी,' 'कोप–प्रसादयोः स्वतन्त्रः'

04 'चन्द्रप्रभचरित' सर्ग 5, पिता का पुत्र को सम्बोधन–राजसिंहासन पर आरूढ़ होने पर।

05 आन्वीक्षिकी त्रयी वार्ता दण्डनीतिरिति चतस्रो राजविद्या।।56।।
आन्वीक्षिक्यध्यात्मविषये, त्रयी वेदयज्ञादिषु, वार्ता कृषिकर्मादिका, दण्डनीतिः साधुपालन–दुष्टनिग्रहः।।6।। –नीतिवाक्यामृत–विद्यावृद्ध समुद्देश

06 सोमदेवसूरि–राजयस्य मूलाक्रमो विक्रमश्च। शुक :–क्रम–विक्रममूलस्य राज्यस्य यथा तरोः। समूलस्य भवेद् वृद्धिस्ताभ्यां हीनस्य संक्षयः।।

07 ''आय–व्ययमुखयोर्मुनिकमण्डलुनिदर्शनम्''। नीतिवाक्य।

08 'आयमनालोचय व्ययमानो वैश्रवणोऽपि श्रमणायते'–नीतिवा, अमात्यसमुद्देश सूत्र 10 अमात्यसमुद्देश, सूत्र 7

09 10 यशस्तिलकचम्पू–श्लोक 75, 76, आ0 3

10 यशस्तिलकचम्पू–श्लोक 72–90, आ0 3

11 'तत्र पंचविधं साम गुणसंकीर्तनं सम्बन्धोपाख्यानं परोपकारदर्शनमायतिप्रदर्शनमात्मोपसन्धा–नमिति–सोमदेवसूरि

12 'बहुवर्थसंरक्षणायालपार्थप्रदानेन परप्रसादनमुपप्रदानम्'। –सोमदेवसूरि।

13 ''योगतीक्ष्ण गूढपुरूषोभयवेतनै परबलस्य परस्परशंकाजननं निर्भतसनं वा भेदः।।''–सोमदेवसूरि

14 यशस्तिलकचम्पू, श्लोक 95 आ0 3

15 यशस्तिलकचम्पू, श्लोक 94 आ0 3

16 यशस्तिलकचम्पू, श्लोक 16 आ0 3

17 यशस्तिलकचम्पू, श्लोक 97, 98, 108 आ0 3

18 यशस्तिलकचम्पू, श्लोक 109 आ0 3

19 ''स्वपरमंडलकार्याकार्यावलोकने चाराः खलु चक्षुंषि क्षितिपतीनाम्।।1।।–नीतिवाक्यामृत, चार–समुद्देश

20 यशस्तिलकचम्पू, श्लोक 111 आ0 3

21 नीतिवाक्चामृत, सूत्र 8 चार–समुद्देश, सूत्र 6 दूतसभुद्देश।

22 'जो पुरूष अपनी योजना छिपाकर रखता है और दूसरे के मन्त्र का भेद पा जाता है, उसका शत्रु कुछ नहीं पा सकता है।' आ0 वीरनन्दी, चन्द्रप्रभचरित्र, सर्ग 5

23 यशस्तिलकचम्पू, श्लोक 28, 29 आ0 3

24 यशस्तिलकचम्पू, श्लोक 36–52 आ0 3

25 महापुराण, सर्ग 42 श्लोक 5, 137–197

26 महापुराण, सर्ग 42 श्लोक 5, 199–201